UGC Approved Journal No. 49321 Impact Factor : 6.125 ISSN : 0976-6650

Shodh Drishti

An International Peer Reviewed Refereed Research Journal

Vol. 13, No. 9 **Year - 13** **September, 2022**

PEER REVIEWED JOURNAL

Editor in Chief
Prof. Abhijeet Singh

Editor
Prof. Vashistha Anoop
Department of Hindi
Banaras Hindu University
Varanasi

Dr. K.V. Ramana Murthy
Principal
Vijayanagar College of Commerce
Hyderabad

Dr. Anil Kumar
Assistant Professor, Department of History
Rajdhani College, University of Delhi

Published by
SRIJAN SAMITI PUBLICATION
VARANASI
E-mail : shodhdrishtivns@gmail.com, Website : shodhdrishti.com, Mob. 9415388337

अनुक्रमणिका

↳	मानवाधिकारों के विकास से समतामूलक समाज की स्थापना : एक समाजशास्त्रीय विवेचन **डॉ0 दिनेश कुमार यादव**	1-2
↳	21वीं शदी में गांधी की प्रासंगिकता : वर्तमान भारत में गांधी के विचार अतिवादियों के लिए एक सबक **डॉ0 संजय कुमार टम्टा**	3-6
↳	राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 एवं महिला शिक्षा **डॉ0 देबकी सिरोला**	7-9
↳	डॉ0 बी0आर0 अम्बेडकर : परिस्थिति और परिणाम **जितेन्द्र कुमार**	10-14
↳	स्त्री विमर्श का आशय **डॉ0 रजनी राय**	15-18
↳	राजा मर्दन सिंह का 1857 की क्रान्ति में योगदान **डॉ0 अनुराग पालीवाल एवं रवि कुमार सोनी**	19-23
↳	कांग्रेस कौमी सेवा दल और बलिया में अगस्त क्रांति **उम्मे फिरदौस**	24-26
↳	संसदीय शासन प्रणाली की प्रासंगिकता **डॉ0 सुधाकर कुमार मिश्र**	27-29
↳	पुराणों में वर्णित तत्वों का निरूपण **डॉ0 ताराचन्द शर्मा**	30-34
↳	प्रधानमंत्री कौशल विकास योजना की प्रभावशीलता **अर्चना मेंदीरत्ता एवं सीमा गुप्ता**	35-38
↳	सहायता प्राप्त एवम गैर सहायता प्राप्त महाविद्यालयों के शिक्षकों की व्यवसायिक संतुष्टि का तुलनात्मक अध्ययन **डॉ0 रवींद्र नाथ सिंह**	39-40
↳	महुआ चरित : देहाशक्ति की कथा **पूजा मिश्रा**	41-42
↳	21वीं सदी की हिंदी आदिवासी कविता : प्रतिरोध व प्रतिबद्धता का सुंदर रचाव **डॉ0 अजय कुमार**	43-46
↳	ग्रामीण विकास में मीडिया की भूमिका **डॉ0 लोकनाथ पांडेय**	47-49
↳	कबीर की मानवतावादी दृष्टि **डॉ0 कुसुम यादव**	50-52
↳	संस्कार निर्माण एवं वर्तमान जीवन में महत्व **डॉ0 रश्मि श्रीवास्तव**	53-55
↳	केदारनाथ अग्रवाल की कविताओं में राजनीतिक चेतना **डॉ0 शरद चन्द्र**	56-58

➷	राष्ट्रीय विकास में हिंदी की भूमिका **डॉ0 उषा मिश्रा**	59-62
➷	काव्यशास्त्रसम्प्रदाय और अलङ्कार **डॉ0 सीमा सिंह**	63-69
➷	भारत–चीन सम्बन्ध : बदलते परिवेश के विशेष सन्दर्भ में (2014–2021) **मंजीत**	70-74
➷	सतना जिले के रामपुर बघेलान विकास खण्ड में भूमि उपयोग के सन्दर्भ में एक भौगोलिक अध्ययन **अनुराग सिंह एवं डॉ0 अशोक कुमार सिंह**	75-79
➷	शिव के कल्याण सुन्दर स्वरूप का पुराणों में सन्दर्भ एवं उसका कला में अंकन **शशिबाला गुप्ता**	80-82
➷	वाराणसी जनपद के माध्यमिक विद्यालयों में राष्ट्रीय माध्यमिक शिक्षा अभियान के प्रति शिक्षकों की अभिवृत्ति एवं जागरूकता का अध्ययन **शिव प्रसाद सोनकर एवं डॉ0 संजय सोनकर**	83-88
➷	संस्कृत भाषा–साहित्य : वर्तमान भाषाविज्ञान की आधारशिला **डॉ0 नीलम यादव**	89-91
➷	मैत्रेयी पुष्पा के कृतियों में सामाजिक संघर्ष **उमेश चन्द्र**	92-96
➷	Growth of Digital Payment System in India: A Trend Analysis **Professor Arun Kumar Mishra & Deeksha Tripathi**	97-106
➷	बाल श्रमिकों की समस्याओं का दशा एवं दिशा **डॉ0 रवि प्रकाश यादव एवं स्नेही कुमारी**	107-109
➷	समकालीन स्त्रीवादी कविता में अभिव्यक्त प्रतिरोध के स्वर **विकास कुमार**	110-112

21वीं सदी की हिंदी आदिवासी कविताः प्रतिरोध व प्रतिबद्धता का सुंदर रचाव

डॉ. अजय कुमार
असिस्टेंट प्रोफेसर (हिंदी), राजा हरपाल सिंह पी. जी. कॉलेज, सिंगरामउ, जौनपुर

21वीं सदी की हिंदी कविता उन स्थितियों और परिस्थितियों का अंकन पूरी ईमानदारी और निष्ठा के साथ कर रही है, जिनमें शताब्दियों से अपनी नियति को बदलने तथा अपने अधिकारों के प्रति सचेतक व उत्प्रेरित समाज है.. वस्तुतः आधुनिक परिदृश्य की कविता में हमें समाज के ऐसे वर्ग के अनछुए एवं अनझांके कोने दृष्टिगत होते हैं जो अपनी विडंबनाओ व जीवनगत विद्रूपताओं से संघर्षरत है तथा जो अपने चिर अंधकार की ओट से निकलकर सार्थक रोशनी की एक किरण के प्रति आशावान हैं या कह सकते हैं कि प्रयासरत हैं.. 21वीं सदी की कविता आज के समाज के साहित्य में पूर्ण तार्किक व यथार्थ के धरातल पर हस्तक्षेप करती है. 21वीं सदी की हिंदी कविता का ऐसा ही एक पूर्ण तार्किक व यथार्थपरक पक्ष है हिंदी आदिवासी कविता जिसने आज की कविता में एक नया आयाम जोड़ने का सार्थक प्रयास किया है.. 21वीं सदी की हिंदी आदिवासी कविता एक प्रकार से लोक जीवन के मूल्यों के संरक्षण व संवर्धन की कविता है, इस प्रकार की कविताओं ने एक अलग ही वर्ग की ओर हमारा ध्यान केंद्रित करने का प्रयास किया है जो हमारे ही समाज का अंग है परंतु जिससे हमारा समाज नितांत अनभिज्ञ है.. हिंदी आदिवासी कविता में आदिवासी समाज की जो मुख्य जीवनगत विषमताएं हैं जैसे जल, जंगल, जमीन, कुपोषण, विस्थापन,भुखमरी तथा सामाजिक व सांस्कृतिक जीवन के अन्यान्य तमाम बिंदु दृष्टिगत होते हैं..इस कविता का एकमात्र अभीष्ट कह सकते हैं कि यदि हम अपने समाज के गौरव के लिए प्रतिबद्ध हैं, चेतनशील हैं, संघर्षरत है तो अपने हिस्से का सूरज हमें स्वयं ही उगाना होगा..यह कविता आत्म प्रदर्शन व मनोरंजन से आगे की दुनिया का एक सहज रचनात्मक रचाव है..वस्तुतः वाचालता, आदर्शवादिता, भौतिकता तथा वैयक्तिकता के विपरीत मर्मस्पर्शिता व हार्दिकता का सुंदर सामंजस्य है हिंदी आदिवासी कविता...

लोकजीवन व लोकसंस्कृति के इन्हीं मानवीय सरोकारों की विकलतम अभिव्यक्ति **अनुज लुगुन** की कविता **'हमारी अर्थी शाही हो नहीं सकती''** में दृष्टिगत होती है-

'हमारे सपनों में रहा है
एक जोड़ी बैल से हल जोतते हुए
खेतों के सम्मान को बनाए रखना
हमारे सपनों में रहा है
कोइल नदी के किनारे एक घर
जहां हमसे ज्यादा हमारे सपने हो'
× × × × × × × × × × × × × × ×
'हमने चाहा कि
फसलों की नस्ल बची रहे
खेतों के आसमान के साथ
हमने चाहा कि जंगल बचा रहे
अपने कुल-गोत्र के साथ'1

कितना निस्पृह जीवन! कितने सहज साधारण से सपने! आज जब समाज नई-नई तकनीकों, वैज्ञानिक अभियांत्रिकी पर इतना इठला रहा हो तो इतना सौम्य जीवन पाने का एक अदना सा स्वप्न! वस्तुतः नवीन तकनीकों व विकास की इस प्रक्रिया से उसे नकार नहीं है, उसे प्रतिरोध है, उसके जनजीवन को अंधाधुंध विकास के नाम पर जड़ों से काट देने का तथा प्रतिबद्धता है अपने परिवेश के प्रति पूर्णतया संपृक्त होने की...अपनी इस कविता में कवि हमें गहरी पीड़ा से उपजे प्रतिरोध और अपनी जमीन पर डटे रहने की निर्भीक अडिगता के मध्य लाकर खड़ा कर देता है...

इसी क्रम में प्रमुख आदिवासी कवियत्री **निर्मला पुतुल** जी आदिवासी स्त्री के साथ जाति के स्तर पर हो रहे भेदभाव को इस प्रकार रेखांकित करती हैं तथा आदिवासी समाज के प्रति अपनी प्रतिबद्धता को इस प्रकार वाणी देती हैं-

' तुम्हारे हाथों बने पत्तल पर भरते हैं पेट हजारों
पर हजारों पत्तल भर नहीं पाते तुम्हारा पेट
जिन घरों के लिए बनाती हो झाड़ू
उन्हीं से आते हैं कचरे तुम्हारी बस्तियों में?'2

मुख्यतः इस कविता के माध्यम से कवियित्री ने आदिवासी समाज के अगाध श्रम को किस तरह शून्य पर रखा जाता है या नगण्य समझा जाता है इसकी अभिव्यक्ति की है...इतना क्रूरतम अमानवीय व्यवहार हमारे समाज के एक हिस्से से क्यों? इस पर सम्यक प्रश्नचिन्ह खड़ा करती है तथा संघर्ष के महत्व पर बल देती है..

इसी अनुक्रम में अपनी संवेदना को व्यापकता प्रदान करते हुए वह आगे **' चुड़का सोरेन'** शीर्षक कविता में लिखती हैं कि-

'बचाओ अपनी बहनों को
कुंवारी मां बनी पड़ोस की
उस शिलवंती के मोहजाल से
पूरी बस्ती को रिझाती जो
बैग लटकाए जाती है बाजार
और देर रात गए लौटती है
खुद को बेच कर बाजार के हाथों'3

इस कविता के माध्यम से निर्मला जी पश्चिमीकरण से प्रभावित आदिवासी समाज में सांस्कृतिक अपक्षय अथवा पतन की ओर संकेत करती है कि किस प्रकार शहरी समाज की आबोहवा आदिवासी समाज की संस्कृति को प्रभावित कर रही है..वस्तुतः कवियित्री आदिवासी समाज में एक सचेतक के रूप में भविष्य में आने वाले संकटों के प्रति सचेत करती है...

विकास व तरक्की के नाम पर छले जा रहे भोले-भाले आदिवासियों की पीड़ा को इस प्रकार दर्ज कराते हैं प्रमुख कवि **महादेव टोप्पो ' फिर भी हम कहते रहे हैं तुम्हें जोहार'** कविता के माध्यम से-

' लेकर सादे कागज में अंगूठे का निशान
रचते रहे हमारे विरुद्ध षड्यंत्र
लेकिन इन सबसे अनजान
अपनी झोपड़ियों में
करते रहे हम तुम्हारा स्वागत
करते रहे तुम्हें जोहार'4

अपने संस्कार व संस्कृति के हवाले से आदिवासी समाज सदैव से सहज व सरल बना रहा है जिसका पूरा पूरा लाभ मुख्यधारा के समाज द्वारा उठाया जाता रहा है...आज भी आदिवासी बहुल इलाकों में विकास के नाम पर स्थापित किए जा रहे हैं उद्योगों को देखकर आदिवासी समाज आशान्वित हो उठता है अपनी आने वाली पीढ़ी के उचित रोजगार के सपने बुनने लगता है, लेकिन गरीबी और अशिक्षा के कारण उसे बार-बार शोषित होना पड़ता है...

' आखिर किन किन रूपों में हम तुम्हें पहचानें
क्योंकि हमने तुम्हारे जिस भी रूप को माना सच
उसी रूप में किया है हमारे साथ विश्वासघात
फिर भी हम कहते रहते हैं तुम्हें जोहार! जोहार! जोहार'!5

अपनी इसी भोली भाली निश्छलता के कारण आदिवासी समाज को कभी भी विकास के उचित अवसर मुख्यधारा के समाज द्वारा प्रदान नहीं किए जाते... तमाम प्रकार के शोषण और अपमान से प्रभावित होकर भी आदिवासी समाज अपनी सहज मानवीय गरिमा को संरक्षित किए हुए है...

कुछ इसी प्रकार अपनी सहज, सरल व संवादपरक मुद्रा में आदिवासी समाज की पीड़ा को उसकी संपूर्णता ओं के साथ उजागर करती हैं **जसिंता केरकट्टा** की कविताएं.. **'डर जो गुलाम बनाता है'** शीर्षक कविता में-

' आखिर क्यों आदमी भगवान ढूंढने आता है?
कौन-सा डर है
जो उसे इतना डराता है?
दो जून की रोटी जुगाड़ ना कर पाने का डर
पढ़ लिख रही दुनिया में
अपने बच्चों के अनपढ़ रह जाने का डर
अंधकार में डूब रहे सूरज की तरह
जीवन में उम्मीद की
कोई किरण न दिखाई पड़ने का डर

पीछे छूट जाने का डर'6

वस्तुतः कवियत्री जल, जंगल, जमीन से इतर भी देखती है..वह एक सचेतक मनुष्य की भांति आदिवासी समाज की राह में आने वाले प्रत्येक खतरे को पहचानती है तथा उससे डर का मार्ग छोड़कर कर्मठ बनाने पर बल देती है..किसी भी प्रकार के डर अथवा भय को छोड़कर वह व्यक्ति को निर्भय होकर जीवन जीने की पक्षधर रही है.. आदिवासी समुदाय को आज के प्रगतिशील समाज में जिस प्रकार खुद की स्थिति को देखकर पीछे रह जाने का डर छीजता रहता है, उसी की सम्यक अभिव्यक्ति कवियत्री ने उक्त पंक्तियों में की है.. इस समाज को अपनी आने वाली पीढ़ी के भविष्य की चिंताएं सालती रहती हैं, क्योंकि जिस वातावरण में वे घुट घुट कर रहते आए हैं, वे नहीं चाहते कि उनकी पीढ़ियां भी उसी घुटन से दो-चार हों...

ग्रेस कुजूर औद्योगिकरण के नाम पर हो रहे प्राकृतिक विघटन इन शब्दों में प्रकट करती हैं-

' सखुआ की पत्तियों में
किसने किए हैं सुराख
कैसे बीनूंगी उनकी पत्तियां
कैसे सीऊंगी दोना और पतरी'7

आदिवासी समाज में आज प्रकृति का दोहन किस स्तर पर हो रहा है और उसके क्या दूरगामी परिणाम इस समाज को भुगतने पड़ रहे हैं उसकी मार्मिक अभिव्यक्ति इस कविता में की गई है...

' अब कहां है वह अखरा?
किसने उगाए हैं वहां
विषैले नागफनी
बार-बार उलझता है जहां
तुम्हारी 'तोलोंग' का फुदना
क्यों उदास है आज
'परवा के उजले पंख'8

उक्त पंक्तियों में अपने व्यवसाय के प्रति इस प्रकार हो रहे शोषण से आदिवासी समाज किस प्रकार जद्दोजहद कर रहा है अथवा शोषित रहा है, इसका पूर्णतया चित्रण है.. हरे-भरे जंगलों को काट कर किस प्रकार से वहां अपने लाभ हेतु औद्योगिकरण का विकास हो रहा है उससे आदिवासी समाज को लाभ कम पहुंचता है, अपितु अपनी जमीनों से वह दूर होता जा रहा है... एक प्रकार से विकास के नाम पर फैलते शोषण का रेखांकन ही इन आदिवासी कविताओं का केंद्रीय तत्व रहा है...वस्तुतः पूंजीवादी सभ्यता के नाम पर प्राकृतिक संसाधनों का अंधाधुंध दोहन हो रहा है जिसका खामियाजा आदिवासी समाज को भुगतना पड़ रहा है...

अद्यतन समाज में पर्यावरणीय ऊर्जा का ह्रास करने वाले तमाम कारक विद्यमान है, ऐसे में विकास के पथ पर अग्रसरित आदिवासी समाज को चेताते हुए प्रमुख कवि **हरिराम मीणा** जी कहते हैं कि-

'देखो तुम्हारे पेड़ गिर रहे हैं!
समुद्र मैला हो रहा है
तटों पर प्लास्टिक की थैलियां बिखर रही हैं
मछलियां दूर चली गई
अक्टोपस छुप गए
सीशैल टूट- गए-!
और तुम चुप हो'?9

वस्तुत आज देश दुनिया में वैश्वीकरण और विकास के नाम पर जो उठापटक हो रही है, उससे प्रभावित आदिवासी समाज की मौन पीड़ा को ना तो कोई समझता है और ना ही उसकी गुहार को कोई सुनता है..ऐसे में कविता ही वह माध्यम बचता है जिससे वह अपनी पीड़ा को सभ्य समाज के मध्य दर्ज कराता है..इस समाज ने कभी किसी से कुछ नहीं मांगा लेकिन फिर भी मुख्यधारा के शहरी समाज ने सदैव उसका शोषण ही किया, कभी विकास के नाम पर अथवा श्रम के नाम पर..लेकिन यह समाज सदैव से ही अपनी संस्कृति के प्रति पूर्णतया समर्पित रहा है..21वीं सदी की हिंदी कविता आदिवासी समाज के तमाम अंतर्विरोधों को उसकी प्रतिबद्धताओं और तमाम प्रतिरोधों के साथ मुखरित रूप में अभिव्यक्त कर रही है...

आज आदिवासियों के समक्ष सबसे बड़ी समस्या बन के उभरा है विस्थापन का दंश.. शहरी परिक्षेत्रों में रोजगार के सम्यक अवसर उपलब्ध होने के कारण कुछ तो अपनी इच्छा से पलायन कर जाते हैं शहरों की ओर जबकि इसके विपरीत आदिवासी समाज के लोग

मुख्यधारा के समाज की बढ़ती स्वार्थ लोलुपता के कारण विस्थापित होने को विवश कर दिया जाते हैं..इसी विस्थापन के दर्द को **मंजू ज्योत्सना** जी ने **'विस्थापित का दर्द'** शीर्षक कविता में इस प्रकार से व्यक्त किया है-

'आऊंगा अगले वर्ष
कहा था बेटे ने
बार-बार कहने के बावजूद
पिछले कई वर्षों से आया नहीं था
शिकायत है उसे
अब अपने गांव में
पलाश के फूल नहीं रहे
सरई के वन नहीं रहे'10

उपरोक्त तथ्य आदिवासियों के स्वाभाविक परिवेश के धीरे धीरे छिन जाने से विस्थापित होने की विवशता का भली भांति परिचय देते हैं... कितना दुखद है किसी भी कारण से अपने परिवेश से ना चाहते हुए भी पृथक हो जाना, यह और भी दुखपूर्ण हो उठता है यदि हम पलायन करने के लिए विवश कर दिए जाते हों, जबकि ज्ञातव्य है कि आदिवासी समाज अपनी जड़ों से गहराई से संपृक्त है...

निष्कर्षत: हम मान सकते हैं कि 21वीं सदी की हिंदी आदिवासी कविता नवोन्मेषी चेतना के साथ आदिवासी समाज की प्रतिबद्धताओं और प्रतिरोधों की काव्यात्मक अभिव्यक्ति है... आज हम न तो आदिवासी समाज के प्रतिरोध को नकार सकते हैं और ना ही अपने समाज, अपने परिवेश, अपनी संस्कृति से उसके जुड़ाव को अस्वीकार कर सकते हैं...हमें अपने ही समाज के इस जरूरी हिस्से को भी पूर्ण सहृदयता और सांवेदिक नैतिकता के साथ अपनाना होगा... हमें यह मानना होगा कि यदि प्रतिबद्धताएं होंगी तो उसमें अवस्थित जड़ मान्यताओं के प्रति प्रतिरोध भी स्वाभाविक रूप से रहेगा. . 21वीं सदी की हिंदी आदिवासी कविता इन्हीं अर्थों में उपादेय बन पड़ती है...

संदर्भ ग्रंथ सूची :

1- समकालीन आदिवासी कविता- संपादक- हरिराम मीणा, अलख प्रकाशन, जयपुर, प्रथम संस्करण 2013,पृष्ठ संख्या 15- 16.
2- नगाड़े की तरह बजते शब्द- निर्मला पुतुल, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, 2005,पृष्ठ संख्या 12- 13
3- नगाड़े की तरह बजते शब्द- निर्मला पुतुल, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, 2005,पृष्ठ संख्या 28- 29
4- समकालीन आदिवासी कविता- संपादक- हरिराम मीणा, अलख प्रकाशन,जयपुर, प्रथम संस्करण 2013,पृष्ठ संख्या 78
5- समकालीन आदिवासी कविता- संपादक- हरिराम मीणा, अलख प्रकाशन, जयपुर, प्रथम संस्करण 2013, पृष्ठ संख्या-80
6- ईश्वर और बाजार- जसिंता केरकट्टा, राजकमल प्रकाशन, प्रथम संस्करण 2022,पृष्ठ संख्या-29
7- समकालीन आदिवासी कविता- संपादक- हरिराम मीणा, अलख प्रकाशन, जयपुर, प्रथम संस्करण 2013,पृष्ठ संख्या- 18
8- समकालीन आदिवासी कविता- संपादक- हरिराम मीणा, अलख प्रकाशन, जयपुर, प्रथम संस्करण 2013,पृष्ठ संख्या -19
9- रोया नहीं था यक्ष- हरिराम मीणा, अक्षर शिल्पी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या-45
10- समकालीन आदिवासी कविता- संपादक-हरिराम मीणा, अलख प्रकाशन, जयपुर, प्रथम संस्करण 2013,पृष्ठ संख्या-46